चुनाव के बहाने देश की समस्याओं पर सवाल

देश में चुनाव से जुड़ी आचार-संहिता के लगते ही सरकारी नीतियों और घोषणाओं पर विराम लग गया है। देश में समस्याओं की कमी नहीं है। यही वह उपयुक्त समय है, जब जनता क्षेत्र के उम्मीदवारों को आईना दिखाकर विभिन्न समस्याओं के निराकरण के लिए कुछ वायदे करवा सकती है। कम-से-कम इन सबको चुनावी घोषणा पत्र में शामिल तो करवाया ही जा सकता है। इसके बाद चुने हुए प्रतिनिधियों पर उन्हें पूरा करने के लिए दबाव भी डाला जा सकता है।

- देश का ज्वलंत मुद्दा कृषि-संकट रहा है, जिसके लिए सत्तासीन सरकार ने हमेशा ही अल्पकालीन अस्थायी उपायों का सहारा लिया। यद्यपि न्यूनतम समर्थन मूल्य में वृद्धि, फसल बीमा योजना, न्यूनतम आय आदि योजनाओं से किसानों को राहत पहुंची है, लेकिन अनेक भूमिहीन किसानों और कृषक-मजदूरों की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है।

कृषि संकट से जुड़े दीर्घावधि उपायों पर सरकार कोई कदम नहीं उठाना चाहती। सब्सिडी कम करना तथा गांवों के विकास को बल देना जैसे काम ढीले पड़े रहते हैं। गांवों के आसपास कोल्ड स्टोरेज बनाना, प्रसंस्करण उद्योग स्थापित करना, वितरण प्रणाली को चुस्त-दुरुस्त करने पर सरकार का कोई ध्यान नहीं है। देश में दूध का उत्पादन इतना अधिक हो गया है कि कृषकों को इस प्रकार के व्यवसायों से भी लाभ नहीं हो रहा है। पिछले दिनों विरोध स्वरूप हजारों लीटर दूध सड़कों पर बहाया गया। सरकार चाहे तो दूध के प्रसंस्करण से संबंधित उद्योगों को बढ़ाकर इसका निर्यात शुरू कर सकती है।

- हमारे देश का आधे से अधिक कार्यबल कृषि में संलग्न है। इसका कारण अन्य क्षेत्रों में रोज़गार का अभाव है। जिस प्रकार से वर्तमान सरकार देश की युवा पीढ़ी को रोज़गार की मरीचिका दिखा रही है, और रोज़गार से संबंधित वास्तविक डाटा छुपाने की कोशिश कर रही है, उससे लगता है कि रोज़गार की दशकों पुरानी समस्या से अब हमारा ध्यान हटना नहीं चाहिए।

रोज़गार की समस्या इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि मनरेगा जैसी अनेक योजनाओं को आनन फानन में शुरू किया गया, लेकिन इनसे भी रोज़गार की मांग पूरी नहीं की जा सकी।

- जलवायु परिवर्तन के साथ ही सूखा, बाढ़, प्रदूषण, पीने के पानी की समस्या आदि विकराल रूप लेती जा रही हैं। लेकिन इनमें से कोई भी मुद्दा शायद ही चुनावी मद्दा बन सका हो।
- पूरे विश्व में भारत ऐसा देश है, जहाँ बिमारियों की मार से लोग त्रस्त हैं। इनमें से कई तो संक्रामक और जान लेवा भी हैं। इन स्थितियों में केवल 40 प्रतिशत जनता को ऐसी स्वास्थ्य योजना से जोड़ा गया है, जिसमें न तो पर्याप्त धनराशि हैं, और न ही संसाधन। इसके अलावा देश की बाकी जनता के लिए कोई यूनिवर्सल हैल्थकेयर जैसा मॉडल कभी क्यों नहीं लाया गया, जैसा कि थाईलैण्ड और आस्ट्रेलिया में है।
- देश की लगभग सभी राजनैतिक पार्टियों के पास गरीबी हटाओ कार्यक्रम रहते हैं। लेकिन तब भी देश की जनसंख्या का एक बड़ा भाग गरीबी से जुड़ी जिंदगी की अनेक विसंगतियों को प्रतिदिन झेल रहा है। मौसम, स्वास्थ्य या बाजार से संबंधित खतरों से इनकी रक्षा के लिए एक प्रकार की आर्थिक सुरक्षा का साधन किया जाना चाहिए।

देश की तीन-चैथाई वयस्क महिलाओं के पास कोई रोज़गार नहीं है। यही कारण है कि बिना शर्त बेसिक इंकम की योजना प्रस्तावित की गई है। परन्तु ऐसे प्रस्तावों की पूर्ति के लिए बड़ी धनराशि चाहिए। इसके लिए वर्तमान में दी जाने वाली सब्सिडी एवं प्रत्यक्ष करों में सुधार करना होगा।

- आर्थिक क्षेत्र से जुड़ी समस्याओं के अलावा वृहद् स्तर पर प्रशासनिक सुधार की भी आवश्यकता है। प्रधानमंत्री कार्यालय में केन्द्रित होती शक्ति ने सहकारी संघवाद की संकल्पना को धराशायी कर दिया है। नौकरशाही में राजनैतिक चाटुकारिता और वरिष्ठता ही प्रोन्नति प्राप्त करने का रास्ता बना हुआ है। यहाँ अच्छे काम और चुस्त प्रदर्शन की कोई कीमत नहीं है।
- दूसरा गैर आर्थिक मुद्दा घृणा और असहिष्णुता से जुड़ा हुआ है। धीरे-धीरे यह अपने पांव पसार रहा है। किसी भी आधुनिक अर्थव्यवस्था के लिए यह अत्यंत घातक है।

उपरोक्त समस्याओं पर राजनैतिक दलों का ध्यान खींचा जाना चाहिए और उन्हें इस पर सोच-विचार कर भविष्य की दृष्टि से नीतियां बनाए जाने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित प्रणव वर्धन के लेख पर आधारित। 27 मार्च, 2019